हमें सौर ऊर्जा के बारे में कैसे पता चला?

आइजिक ऐसिमोव

हिंदी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

HOW DID WE FIND OUT ABOUT SOLAR POWER?

By: Isaac Asimov
Hindi Translation : Arvind Gupta

हमें सौर ऊर्जा के बारे में कैसे पता चला?

आइजिक ऐसिमोव

हिंदी अनुवादः अरविन्द गुप्ता

1 सूर्य का प्रकाश

सूर्य के प्रकाश या धूप में सौर-ऊर्जा होती है और प्राणियों ने इसका हमेशा से उपयोग किया है। सौर-ऊर्जा ही पृथ्वी पर ऊर्जा का एक मात्र-स्रोत्र है।

हरे पौधे सूर्य की ऊर्जा से पानी का विघटन कर हाईड्रोजन और ऑक्सीजन बनाते हैं। फिर वे हाईड्रोजन, हवा की कार्बन-डाईऑक्साइड और पानी के कुछ तत्वों से अपना भोजन बनाते हैं। इसी भोजन को मनुष्य और सभी अन्य प्राणी खाते हैं। इसी से वो सारी लकड़ी बनती है जिसका हम उपयोग करते हैं।

पानी के विघटन से पैदा हुई ऑक्सीजन हवा में मिल जाती है। मनुष्य समेत सभी प्राणी इसी ऑक्सीजन की सांस लेकर जिन्दा रहते रहते हैं।

लाखों-करोड़ों साल पहले के हरे पौधों ने जमीन में दबने के बाद कोयले का रूप लिया। समुद्र में रहने वाले सूक्ष्म प्राणी कोशिकाओं (सेल्स) समुद्र की तलहटी में दब कर तेल और प्राकृतिक गैस में बदल गए। आज हम जो कोयला, तेल या प्राकृतिक गैस उपयोग करते हैं यह चीजें बहुत पहले सूर्य की ऊर्जा से ही पैदा हुई थीं।

सूर्य की धूप ही पृथ्वी पर हवा को गर्म करती है। पृथ्वी पर कहीं ज्यादा-कम धूप पड़ने के कारण हवा भी दिन में और साल में कहीं ठंडी और कहीं गम रहती है। इससे कुछ इलाकों में बहुत ठंडी और कुछ इलाकों में गर्म हवा होती है। गर्म हवा हल्की होने के कारण ऊपर उठती है और ठंडी हवा उसका स्थान लेती है। सूर्य की धूप के कारण ही तेज हवाएं चलती हैं और हम इस पवन-ऊर्जा का भी उपयोग कर सकते हैं।

सूरज की धूप से महासागरों का पानी भाप बनता है जिससे आसमान में बादल बनते हैं। उपयुक्त परिस्थितियां होने पर बादलों में पानी की छोटी-छोटी बूंदें मिलकर बड़ी बूंदे बनकर बारिश के रूप में जमीन पर गिरती हैं। बारिश का यह पानी जमीन से बहते हुए फिर सागर में जाकर मिलता है। बहती नदियों और झरनों से भी हम ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

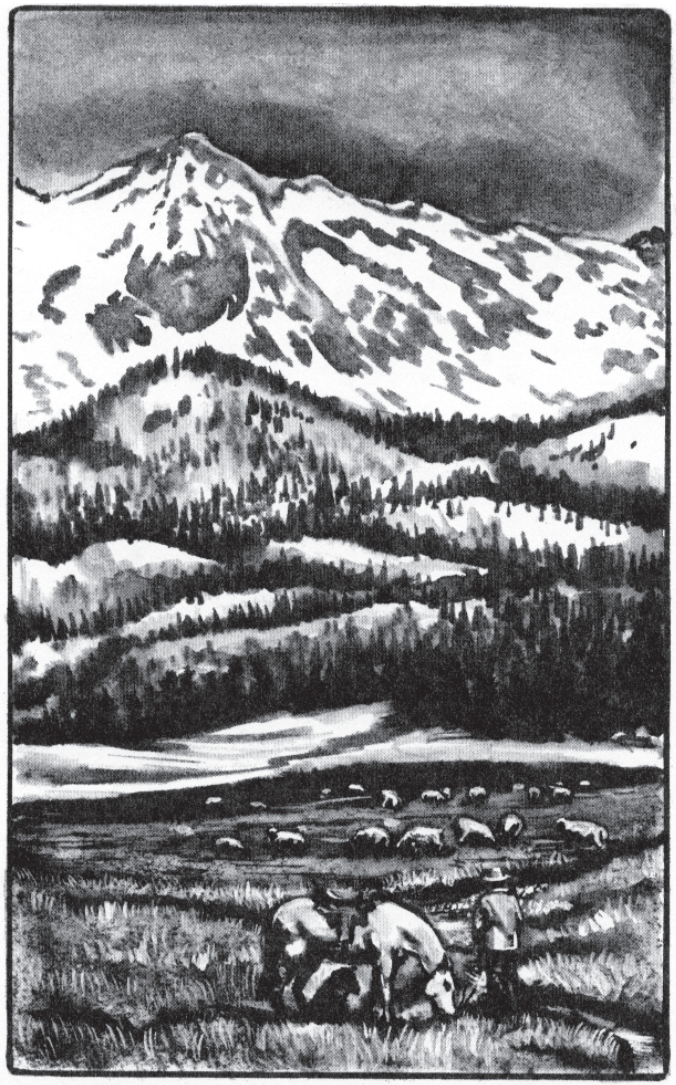

हम चाहें किसी भी ऊर्जा का उपयोग करें उसका मूल उद्‌गम सूर्य ही होगा।

सौर-ऊर्जा इन परम्परागत ऊर्जा स्रोत्रों से भिन्न है। सौर-ऊर्जा का मतलब धरती पर पड़ रही सूर्य की रोशनी और उसमें मौजूद गर्मी से है। हम यहां बारिश, पवन-ऊर्जा, कोयला, तेल या पौधों में संचित ऊर्जा की बात नहीं कर

रहे। हमारा आशय यहां सिर्फ धूप से है – और उसमें मौजूद सूर्य की ऊर्जा से है।

सूर्य से पृथ्वी तक बहुत मात्रा में ऊर्जा पहुंचती है। हर साल सूर्य से पृथ्वी पर पहुंचने वाली ऊर्जा की मात्रा धरती पर पाए जाने वाले समस्त कोयले, तेल, गैस आदि से 130 गुना अधिक आंकी गई है।

सौर-ऊर्जा की यह मात्रा शाश्वत रूप से साल-दर-साल पृथ्वी पर लगातार पड़ती रहती है। वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य की यह कृपा अगले 500-600 करोड़ सालों तक जारी रहेगी।

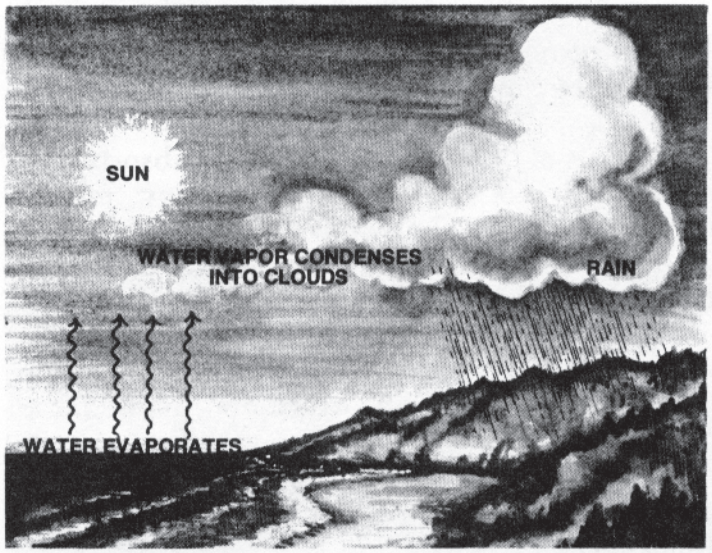

WATER CYCLE

जल चक्र

इसमें से सूर्य की कुछ ऊर्जा वायुमंडल को गर्म करने और हवा के तूफान पैदा करने में खर्च होती है। कुछ ऊर्जा सागरों के पानी को भाप में बदलती है। कुछ ऊर्जा पेड़-पौधों द्वारा सोखी जाती है। पर यह सूर्य की ऊर्जा का एक बहुत छोटा हिस्सा ही होती है। असल में सूर्य की अधिकांश ऊर्जा पृथ्वी ही सोखती है।

पृथ्वी द्वारा सोखी गई सूर्य की ऊर्जा बरबाद नहीं होती। वही ऊर्जा पृथ्वी को गर्म रखती है। उसके बिना पृथ्वी एकदम ठंडी पड़ जाती। ठंड में हर चीज जम जाती और पृथ्वी पर कोई जीवन सम्भव नहीं होता।

अगर पृथ्वी लगातार रोज-रोज सूर्य की ऊर्जा को सोखती रहती तो उससे उसका तापमान लगातार बढ़ता रहता और अंत में धरती पर सभी चीजें उबलने लगतीं और वहां पर सारा जीवन नष्ट हो जाता। भाग्यवश, दिन में पृथ्वी जो ऊर्जा सोखती है उसे रात के समय वो वायुमंडल में छोड़ देती है।

दिन में आने वाली ऊर्जा और रात में जाने वाली ऊर्जा के संतुलन के कारण ही पृथ्वी पर लगातार एक सही तापमान बना रहता है।

पर अगर हम इस सूर्य-ऊर्जा का थोड़ा उपयोग करें तो उससे इस संतुलन पर तो कोई असर नहीं पड़ेगा और कोई नई मुश्किल तो नहीं खड़ी होगी?

नहीं। असल में हम इस ऊर्जा को इस्तेमाल नहीं करेंगे। हम इस ऊर्जा की उपयोग कर भी नहीं सकते। हम बस इस ऊर्जा को एक प्रकार की ऊर्जा से दूसरे प्रकार की ऊर्जा में बदल भर सकते हैं जो अंत में ऊष्मा या गर्मी में ही परिवर्तित होगी। सूर्य-ऊर्जा का कुछ भी उपयोग करने से अंत में उससे पृथ्वी गर्म ही होगी। पर पृथ्वी को गर्म करने से पहले हम उसका इस्तेमाल कर पाएंगे।

यह कुछ-कुछ झरने के नीचे नहाने जैसे होगा। झरने का पानी हमारे बदन के साबुन को धोकर फिर नीचे नदी में मिल जाएगा। झरना पहले जैसे ही नदी को भरेगा पर नदी तक पहुंचने से पहले हम उसका उपयोग कर पाएंगे।

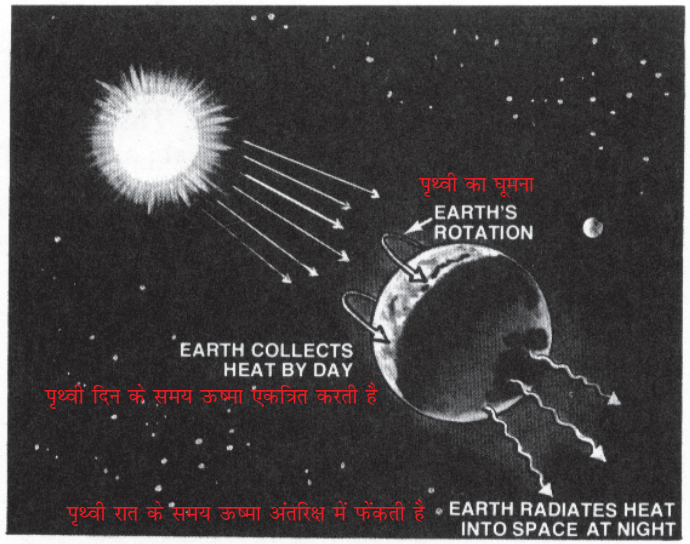

THE EARTH'S HEAT COMES FROM THE SUN

पृथ्वी पर ऊष्मा सूर्य से आती है

लोगों ने सूर्य का हमेशा से इस्तेमाल किया है। ठंडे मौसम में हम धूप सेंकते हैं और सड़क पर धूप में चलते हैं। इससे हमें गर्मी मिलती है और हम आराम महसूस करते हैं।

प्राचीन काल में ठंडे इलाकों में मकानों की दक्षिण दीवार को धूप आने के लिए खुला छोड़ा जाता था। सर्दियों में जब सूर्य आसमान में नीचे होता तब सूर्य की इन बेशकीमती किरणों को दक्षिण दीवार की खिड़कियां बहुत खूबसूरती से पकड़ती थीं।

पर अगर धूप के लिए घर खुला होगा तो फिर उसमें बारिश, ठंडी हवाएं और बर्फ भी अंदर आएंगी। रोमन साम्राज्य में घरों के खुले हिस्सों को पारदर्शी कांच से ठंका गया। इससे धूप तो अंदर आती परन्तु हवा, धूल और खराब मौसम बाहर ही रहता।

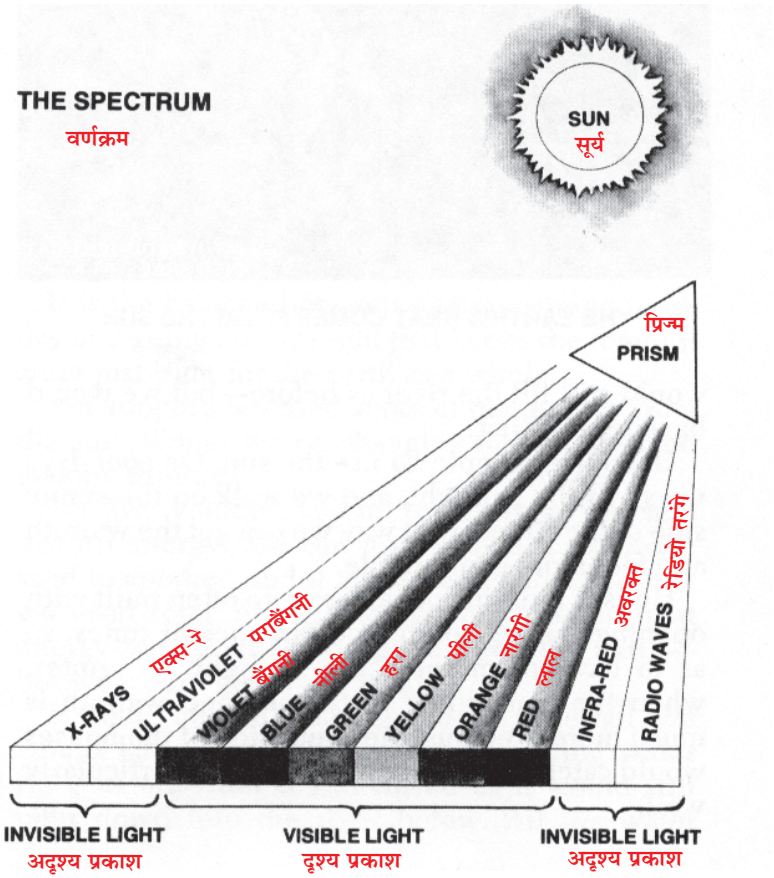

कांच का उपयोग करके धनी रोमनवासी सर्दियों में अपने घरों को गर्म रख पाए। धूप घर के अंदर आकर वहां की हवा को गर्म करती। और फिर यह गर्म हवा बाहर वापस नहीं जा पाती।

गर्म हवा इंफ्रारेड-किरणों के माध्यम से ऊष्मा पैदा करती है। यह इंफ्रारेड-किरणें कुछ-कुछ प्रकाश किरणों जैसी ही होती हैं। इंफ्रारेड-किरणें लम्बी होने के कारण हमें दिखाई नहीं देती हैं। कांच में से प्रकाश की छोटी किरणें तो गुजरकर अंदर चली जाती हैं, परन्तु लम्बी इंफ्रारेड-किरणें अंदर से बाहर नहीं जा पातीं। इससे घर के अंदर का तापमान बढ़ता रहता है।

रोमवासियों ने पौधे उगाने के लिए कांच के छोटे-छोटे घर बनाए। पौधों को बाहर की सर्द ठंड शायद नष्ट कर देती पर कांच के घरों में कैद गर्मी से पौधे अच्छी तरह पनपते थे। जब भीषण ठंड में बाहर कुछ नहीं उगता, तो भी कांच के घरों में पौधे हरे या 'ग्रीन' रहते हैं। इसलिए यह कांच के घर 'ग्रीनहाउस' कहलाते हैं।

जिस तरह से कांच (और अन्य कुछ पदार्थ) गर्मी को फंसाकर बढ़ाते हैं उस प्रभाव को 'ग्रीनहाउस इफैक्ट' कहते हैं।

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद लोग ग्रीनहाउस के बारे में भूल गए। पर वर्तमान काल में उनकी पुनः खोज हुई।

2 दर्पण और गर्म डिब्बे

क्या सूर्य की किरणों को इकट्ठा करके उन्हें एक छोटे क्षेत्रफल में केंद्रित करने का कोई तरीका है? तब बहुत सारी ऊर्जा एक छोटे से क्षेत्र में केंद्रित होगी जिससे वहां का तापमान बढ़ेगा और उस ऊर्जा के तब कई उपयोग होंगे।

पुराने जमाने में यूनानियों और चीन के निवासियों ने एक खोज की। उन्होंने जब प्रकाश की किरणों को एक अवतल (तवे जैसे अंदर की ओर मुड़े) दर्पण से परावर्तित किया तो वे एक बिंदु पर केंद्रित हुयीं। एक ही दिशा में समानांतर आतीं सूर्य की किरणें अवतल दर्पण से टकराकर एक बिंदु पर इकट्ठी हो जातीं।

परावर्तित किरणें जिस क्षेत्र में आकर मिलतीं उसे फोकस (लैटिन में 'आग का स्थान') इसलिए कहलाया क्योंकि वहां के अधिक तापमान से ज्वलंत चीजों में फौरन आग लग जाती थी।

सबसे पहले उपयोग में लाए गए दर्पणों का आकार अर्धगोल था। इन

दर्पणों से किरणें एक बिंदु पर आकर नहीं मिलती थीं। ईसा पूर्वी 230 ईसवीं में यूनानी गणितज्ञ डोहशिथईओस ने दिखाया कि परवलय आकार का गोला किरणों को एक बिंदु पर केंद्रित करने में अधिक सक्षम होगा। परवलय आकार अर्धगोल से भिन्न होकर लगभग अंडे के छोटे सिरे के कटान जैसा होता है।

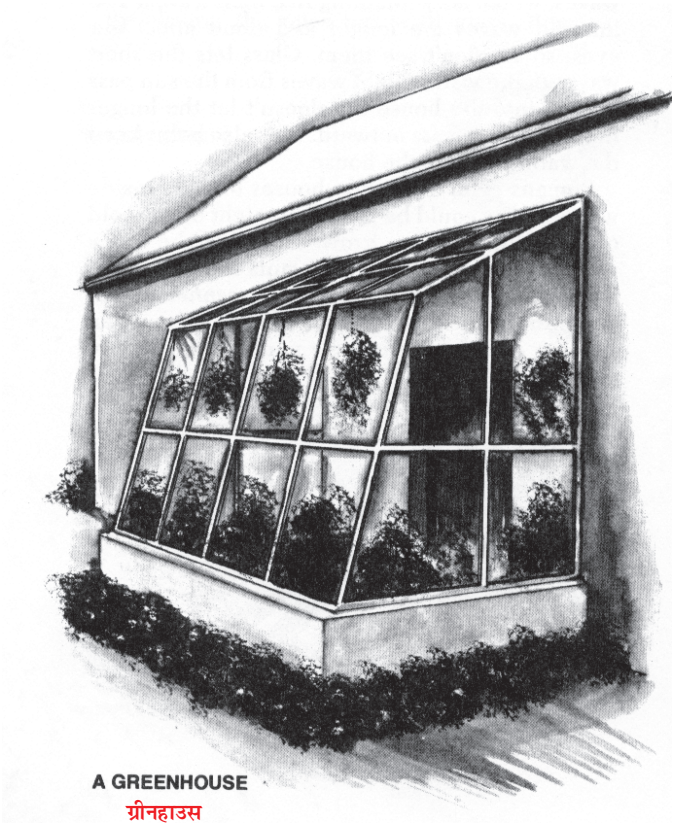

A GREENHOUSE
ग्रीनहाउस

एक परवलय आकार के दर्पण के अंदर वाली सतह से परावर्तित किरण एक बिंदु पर आकर फोकस होगी। इस बिंदु का तापमान बहुत ऊंचा लगभग सूर्य की सतह के तापमान 6000 डिग्री सेल्सियस के बराबर होगा। इतने अधिक तापमान पर सभी जलने वाली चीजें जल जाएंगी और जो जल नहीं सकती हैं वे पिघल जाएंगी। इस प्रकार के दर्पणों को 'सूर्य-भट्टी' का नाम दिया गया।

पुराने जमाने में यूनानवासी इस प्रकार के दर्पण नहीं बना सकते थे। इन दर्पणों का बनाना वर्तमान काल में ही सम्भव हुआ। एक कहानी के अनुसार ग्रीक

गणितज्ञ आर्कमेडीज दर्पण बनाने में काफी माहिर थे। ईसा पूर्वी 214 में जब रोमवासियों ने सिसिली के तट पर स्थित उनके शहर सायराक्यूज को घेरा तब उन्होंने दर्पणों की सहायता से दुश्मन के जहाजों को जलाया।

मध्ययुग में जलाने
वाले छोटे लेन्स

SMALL BURNING MIRROR
USED IN MIDDLE AGES

आर्कमेडीज के बारे में यह कहानी शायद सही न हो। परन्तु इतना स्पष्ट है कि तब भी लोग युद्ध के लिए सौर-ऊर्जा के बारे में सोच रहे थे।

ईसा के बाद 1000 में मिस्त्र में रहने वाला एक अरबी मुस्लिम वैज्ञानिक अल-हजन ने 'प्रकाश' के विषय पर एक पुस्तक लिखी जिसमें उसने किरणों को केंद्रित करने के लिए परवलय आकार के दर्पणों का उल्लेख किया। 1250 के लगभग एक अंग्रेज विद्वान रॉजर बेकन ने अल-हजन की किताब पढ़ी और उसे लगा कि एक दिन मुसलमान ऐसे दर्पणों को इसाईयों के खिलाफ युद्ध में इस्तेमाल करेंगे। इसलिए बेकन ने इसाईयों को ऐसे अस्त्र पहले बनाने का सुझाव दिया।

युद्ध के लिए दर्पण शायद कभी नहीं बने पर अब छोटे दर्पण बनना शुरू हुए। इन छोटे दर्पणों से धातु के टुकड़ों को गलाया जा सकता था। युद्ध में काम आने वाले बड़े दर्पणों को बनाना एक बहुत कठिन काम था।

पर सूर्य की गर्मी को केंद्रित करने के अब अन्य तरीके खोजे जा चुके थे। रोमवासियों के ग्रीनहाउस की दुबारा खोज के बाद अब उसका अच्छा उपयोग होने लगा था।

1767 में एक स्विस वैज्ञानिक होरेस डी सौसूर ने कई कांच के डिब्बों को एक-के-अंदर-एक रखा। हरेक डिब्बा अपने बाहर वाले डिब्बे से ज्यादा ऊष्मा सोखता और इससे सबसे अंदर वाले डिब्बे का तापमान इतना अधिक बढ़ जाता कि उसमें पानी उबलने लगता।

ILLUSTRATION FROM ALHAZAN'S BOOK
अल-हजन की पुस्तक का चित्र

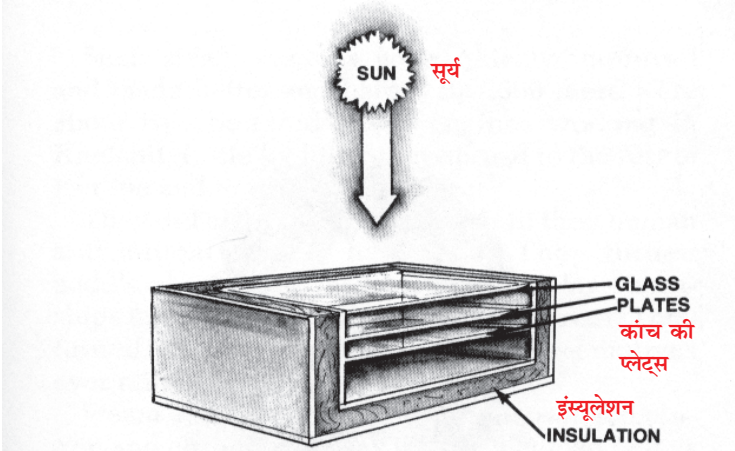

CROSS-SECTION OF DE SAUSSURE'S HOT BOX
हारेस डां सौसूर का गर्म-डिब्बा

इस प्रकार के गर्म-डिब्बों को दिलचस्प यंत्र के रूप में देखा जाता था। 1830 में ब्रिटिश खगोलशास्त्री विलियम हरशेल दक्षिण अफ्रीका में तारों का अध्ययन कर रहे थे। दूर-सुदूर के इस इलाके में उन्होंने भोजन पकाने के लिए एक गर्म-डिब्बा डिजाइन किया जो सिर्फ धूप का उपयोग करता था।

SIR JOHN HERSCHEL

सर जॉन हरशेल

असल में वक्र दर्पण या गर्म-डिब्बे बनाना एक मुश्किल काम था। इसकी तुलना में कोयला या लकड़ी जलाकर उस पर भोजन पकाना या धातु गलाना कहीं अधिक आसान था। और इसलिए ज्यादातर लोग यही करते थे।

1769 में एक स्कॉटिश इंजीनियर जेम्स वॉट ने भाप चलित पहला अच्छा स्टीम-इंजन बनाया। इस इंजन में लकड़ी या कोयला जलाकर एक धातु की टंकी में पानी को उबाला जाता था। इससे बनी भाप फैलती थी जिससे धातु के लीवर इधर-उधर घूमते और उन से मशीनें चलती थीं।

जल्द ही भाप के इंजनों में अनेकों संशोधन हुए और वे बेहतर बने। 1800 में इंग्लैंड में इस प्रकार के करीब 500 इंजन कार्यरत थे। धीरे-धीरे करके वो यूरोप में और फिर अमरीका में फैले।

यह भाप-चलित इंजन वो सभी काम करते जिन्हें पहले मनुष्य या जानवरों की मांसपेशियां करती थीं। वो पानी के चक्के को चलाते जिससे कि वो हवा और पानी की धार के विरुद्ध भी आगे बढ़ पाता। उनसे कोयले के इंजन चलते और रेल के डिब्बे पटरियों पर दौड़ते।

भाप के इंजनों ने ही औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात किया। उनसे लोगों

की जीवनपद्धति में एक भारी परिवर्तन आया।

भाप के इंजन के चलने के लिए लगातार कोयले या लकड़ी को जलाना जरूर था। पर ऐसे भी तमाम इलाके थे जहां पर कोयला या लकड़ी का अभाव था। वहां पर बहुत दूर से लकड़ी और कोयला ढोकर लाया जाता था और यह बहुत मंहगा पड़ता था। क्या भाप पैदा करने का कोई और सरल तरीका था?

क्या सूर्य की ऊर्जा से पानी उबालकर भाप पैदा की जा सकती थी? इस प्रकार के सोलर इंजन में धूप से उपयोगी काम लिया जा सकता था। इस तरीके की अनेकों सम्भावनाएं थीं, क्योंकि धूप हर जगह मौजूद थी और एकदम मुफ्त में उपलब्ध थी।

प्राचीन काल में सूर्य का इसी तरह उपयोग किया गया था। रोमन साम्राज्य के समय एक यूनानी इंजीनियर हीरो ने दो कांच के बर्तनों को एक नली से जोड़कर एक यंत्र बनाया था।

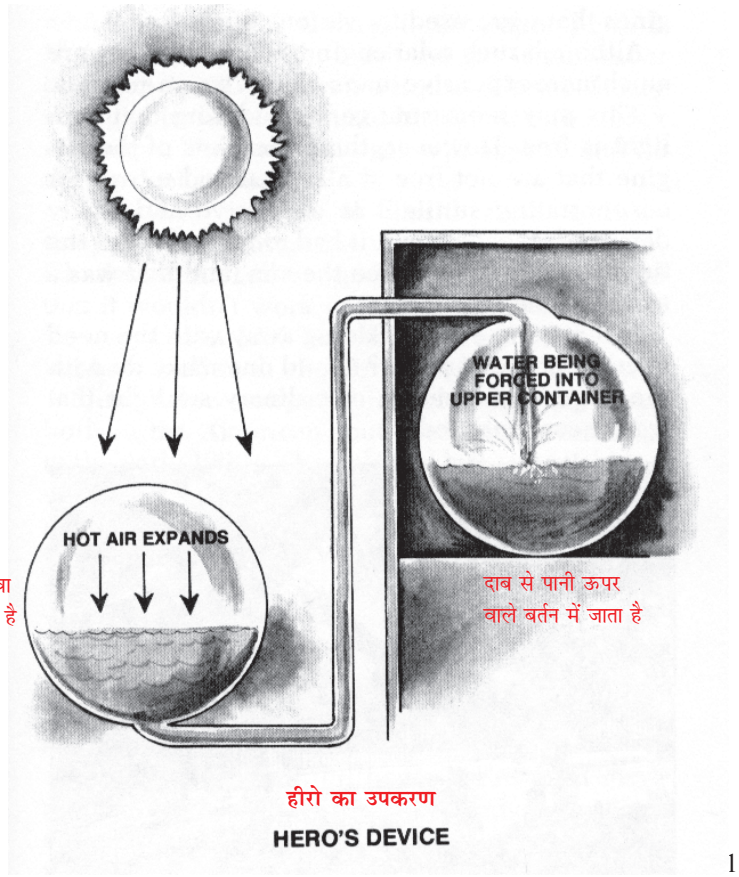

हीरो का उपकरण

HERO'S DEVICE

एक बर्तन के पेंदे में पानी था। इसके पेंदे से एक नली दूसरे बर्तन के ऊपरी भाग से जुड़ी थी। जब पानी वाले बर्तन को धूप में रखा जाता तो उसके अंदर की हवा गर्म होकर फैलती। इससे नली में पानी चढ़कर दूसरे बर्तन में चला जाता।

पानी चढ़ाने का यह काम सूर्य की धूप से सम्पन्न होता। पर हीरो का उपकरण महज एक खिलौना था।

इसी प्रकार सूर्य की धूप से फैलती हवा जब 'ऑर्गन पाइप' नामक वाद्य-यंत्र में से गुजरती तो वो संगीत के सुर पैदा करती। ऐसी कई प्राचीन मूर्तियां हैं जो धूप में संगीत पैदा करती हैं। धार्मिक लोगों को इसमें अलौकिक शक्ति महसूस हुई जबकि यह महज धूप में हवा का फैलना था।

औगस्टिन मूशो नाम के फ्रेंचवासी सौर-ऊर्जा मे रुचि लेने वाले पहले आधुनिक वैज्ञानिक थे। 1861 में उन्होंने पहली बार गर्म-डिब्बों पर मुड़े दर्पणों द्वारा बाहर से और अधिक धूप केंद्रित की। इससे इन गर्म-डिब्बों का तापमान और बढ़ा।

इस उपकरण से मूशो पानी ऊपर उठाने में सफल हुए। वो हीरो की तुलना में पानी की बहुत अधिक मात्रा को तेजी से उठा पाए। हरशेल की तरह मूशो उससे भोजन पका पाए और अंगूरों के रस को उबाल कर वाईन बना पाए।

1866 में मूशो ने एक बड़ा गर्म-बक्सा बनाया। उसकी मदद से वे पानी उबालकर एक भाप का इंजन चला पाए।

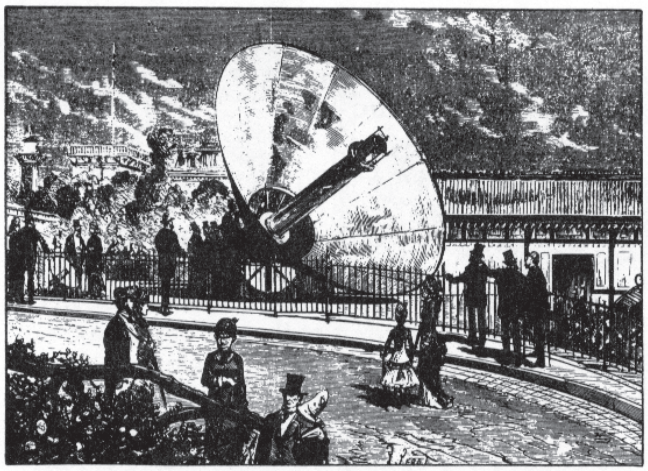

MOUCHOT'S SOLAR ENGINE, PARIS 1878

मूशो का सोलर-इंजन (पैरिस 1878)

इस उपकरण का आकार बहुत बड़ा था और उसमें कई कमियां थीं। फिर फ्रांस जैसे ठंडे मुल्क में धूप की भी कमी थी। सर्दियों में अक्सर रोजाना बादल छाए रहते थे। इसलिए फ्रांस में मूशो को अपना सोलर-इंजन उपयोग करने का मौका ही नहीं मिला।

इसलिए मूशो ने उत्तरी अफ्रीका में स्थित फ्रेंच कॉलोनी अल्जीरिया में प्रयोग करने की ठानी। वहां धूप की कोई कमी न थी। दूसरे वहां कोयला बिल्कुल नदारद था इसलिए वहां सौर-ऊर्जा और ज्यादा उपयोगी साबित होती। उत्तरी अफ्रीका में मूशो ने अनेकों सौर-इंजन लगाए जो वहां भिन्न-भिन्न कार्य करने के लिए इस्तेमाल किए गए।

वहां के सौर-इंजनों ने अच्छा काम किया पर साधारण इंजनों की अपेक्षा में वो बहुत अधिक मंहगे थे।

क्योंकि धूप तो मुफ्त में मिलती है इसलिए यह बात खटकती है। पर सच यह है कि सौर-इंजनों के कई पुर्जे बहुत मंहगे होते हैं। सूर्य की किरणों को केंद्रित करने वाला अवतल दर्पण भी बहुत मंहगा होता है और बहुत जल्दी खराब हो सकता है। फिर दर्पण को सूर्य की किरणों को पकड़ने के लिए हमेशा सूर्य की दिशा में घुमाना पड़ता था। यह बड़ा मुश्किल काम था।

क्या सूर्य के प्रकाश को केंद्रित करने के अलावा और कोई विकल्प था? क्या कम तापमान की साधारण सूर्य की रोशनी को बिना केंद्रित किए उपयोग किया जा सकता था।

कम तापमान के इंजनों के लिए पानी से कम तापमान पर उबलने वाले तरल पदार्थों का उपयोग किया जा सकता था। उदाहरण के लिए अमोनिया -33 डिग्री सेल्सियस पर उबलता है। अमोनिया असल में एक गैस होती है परन्तु दाब लगने पर वो एक तरल में बदल जाती है। सूर्य की साधारण धूप की गर्मी से वो फिर से गैस में बदल जाती है। इस दौरान अमोनिया गैस फैलती है और भाप जैसा ही काम करती है।

इस प्रकार कम-तापमान पर चलने वाला पहला सोलर-इंजन फ्रेंच इंजीनियर चार्ल्स टेल्ये ने बनाया। उन्हें भी लगा कि इस प्रकार का इंजन फ्रांस के मौसम में अच्छा नहीं चलेगा परन्तु वो अफ्रीका के लिए बेहद उपयुक्त होगा। 1890 में उन्होंने इसके बारे में एक किताब भी लिखी।

1900 के शुरू में ऐसे कम तापमान के सौर-इंजन अमरीका के दक्षिण-पश्चिमी रेगिस्तान में भी बने। सबसे बड़े और बेहतरीन इंजन अमरीकी इंजीनियर फ्रैंक शूमैन ने अफ्रीका में बनाए। पर जैसे ही सौर-ऊर्जा का भविष्य उज्जवल दिखा तभी प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और सौर-ऊर्जा की सारी उम्मीदों

पर पानी फिर गया। युद्ध समाप्त हो पहले ही शूमैन का देहान्त हो गया।

इस बीच साधारण इंजनों में कई सुधार हुए और वो पहले से कहीं बेहतर बने। सौर-इंजनों के लिए यह एक अच्छी खबर नहीं थी। उसके साथ ईंधन के नए स्रोत्र भी मिले।

प्रथम महायुद्ध के बाद तेल ईंधन के रूप में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाने लगा। कोयले के मुकाबले तेल को उपयोग करना कहीं ज्यादा आसान था। ऐसे माहौल में मुश्किल और जटिल सौर-इंजनों में सुधार की बात लोग भूल गए।

3 गर्म पानी

पानी के उपयोगी होने के लिए उसका उबलता होना जरूरी नहीं है। कई बार थोड़े से गर्म या गुनगुने पानी से भी काम चल जाता है। उदाहरण के लिए अगर ठंडे पानी से नहाना आरामदेह नहीं है तो एकदम उबलते पानी से तो बदन जल भी सकता है। नहाने के लिए सामान्य गर्म पानी ही सबसे बेहतर होता है। यह बात केवल स्नान के लिए ही नहीं परन्तु अपने हाथों से कपड़े या बर्तन धोने के लिए भी सही है।

परन्तु गर्म पानी के लिए उसे किसी बर्तन में रखकर आग पर गर्म करना जरूरी होगा। क्योंकि नहाने, कपड़े और बर्तन धोने के लिए बहुत पानी लगेगा इसलिए उसे गर्म करने में काफी ईंधन भी खर्च होगा।

आग जलाए रखने के लिए लकड़ी काटना या दूर से कोयला ढोकर लाने कठिन काम है और उसमें खर्चा भी काफी है। इसलिए पिछली शताब्दी में सप्ताह में केवल एक ही दिन 'स्नान दिवस' होता था जिससे कि एक ही दिन में सारा कठिन काम सम्पन्न हो जाए। उस समय लोग हफ्ते में बस एक ही दिन नहाते थे।

अगर यह कठिन कार्य सूर्य की सहायता से सम्पन्न तो फिर क्या? पानी से भरी टंकी धूप में रखने से उसका पानी गर्म होगा ही, क्यों?

हां, पानी गर्म तो होगा पर उसमें बहुत समय लगेगा - शायद आधा दिन लगे। पर अगर अचानक बादल छा जाएं या फिर रात हो जाए तो फिर क्या? पानी जल्दी से ठंडा हो जाएगा।

1891 में एक अमरीकी आविष्कारक क्लैरेन्स एम केम्प ने फेल्ट से भरे डिब्बे में बेलनाकार बर्तनों में पानी रखा। फेल्ट एक कुचालक है और उसके

कारण डिब्बे में से गर्मी जल्दी निकल नहीं पाती है। बक्से के ऊपरी भाग पर कांच लगा था। इस प्रकार एक अच्छा गर्म-बक्सा तैयार हुआ।

CLARENCE M. KEMP
क्लैरेन्स एम केम्प

कांच में से धूप अंदर आकर पानी को गर्म करती। फेल्ट के कारण यह गर्मी डिब्बे में से जल्दी बाहर नहीं निकल पाती। इसलिए डिब्बे का अंदर का भाग जल्दी गर्म होता और गर्म बना रहता। इस प्रकार के सोलर वॉटर हीटर्स को लोग धूप में छतों पर लगाने लगे। गर्म पानी एक पॉइप से घर में उपयोग के लिए जाता। और गर्म पानी खत्म होने पर सोलर हीटर की टंकी में गर्म होने के लिए और ठंडा पानी आता।

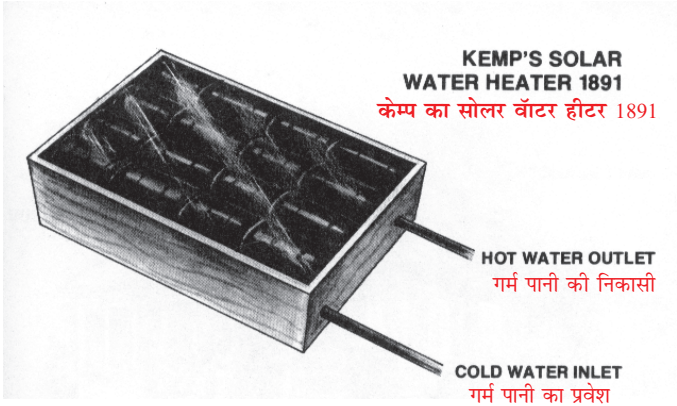

पर सोलर वॉटर हीटर में रात की ठंड के कारण सुबह तक पानी ठंडा हो जाता। और सुबह - सबसे ज्यादा जरूरत के समय लोगों को गर्म पानी नहीं मिलता था।

1909 में एक अमरीकी इंजीनियर विलियम जे बेली ने इसमें सुधार किया। उसने सोलर वॉटर हीटर के अंदर पॉइप में बस थोड़ा ही पानी रखा। मात्रा कम होने के कारण यह पानी बहुत जल्द ही गर्म हो जाता था। इस गर्म पानी को रसोईघर में एक कुचालक टंकी में संचित करके रखा जाता था। इस टंकी को मोटे कुचालक चीजों से लपेटा जाता जिससे उसमें से ऊष्मा का बहाव कम-से-कम हो।

दिन के समय रसोईघर की टंकी में गर्म पानी भरता रहता था। रात के समय इस टंकी में और पानी नहीं भरा जाता था। पर जो पानी इस कुचालक टंकी में रहता वो सुबह तक स्नान और कपड़े, बर्तन आदि धोने के लिए गर्म रहता। सुबह का काम खत्म होने के बाद रसोई की टंकी में फिर से गर्म पानी भरना शुरू हो जाता।

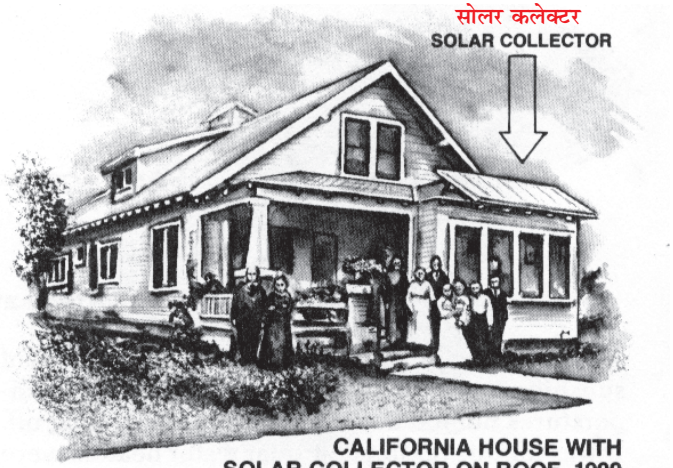

CALIFORNIA HOUSE WITH SOLAR COLLECTOR ON ROOF, 1909

कैलिफोर्निया के घर की छत पर सोलर कलेक्टर 1909

इस तरह के सोलर वॉटर हीटर्स अत्यधिक धूप वाली जगहों पर जहां तापमान ज्यादा होता सबसे अच्छा काम करते। अत्यधिक धूप से बहुत मात्रा में पानी गर्म होता और गर्म तापमान के कारण वो फिर जल्दी ठंडा भी नहीं होता। इस कारण से प्रचंड धूप वाले क्षेत्र जैसे दक्षिण कैलिफोर्निया में सोलर वॉटर हीटर्स बहुत लोकप्रिय हुए। धीरे-धीरे करके वे एरीजोना, न्यू मेक्सिको और बाद में फ्लोरिडा में भी प्रचलित हुए।

इस बीच कुछ अन्य कारणों से सोलर वॉटर हीटर्स फिर एक बार लोगों की नजर से उतर गए।

अचानक बड़ी मात्रा में प्राकृतिक गैस की खोज हुई। इससे गैस की उपलब्धता बढ़ी और उसकी कीमत में गिरावट आई। पानी गर्म करने के लिए अब आपको लकड़ी चीरने या फिर कोयला ढोने की जरूरत नहीं थी। बस माचिस से गैस जलाएं और जल्दी से गर्म पानी पाएं। इस प्रकार किसी भी मौसम - बारिश, सर्दी या रात के समय जब भी जरूरत होती गर्म पानी मिल जाता।

गर्म पानी की टंकी में लोग थरमोस्टैट लगाने लगे। थरमोस्टैट तापमान में बदल को मापता है। अगर टंकी में पानी का तापमान ठंडा होता तो थरमोस्टैट से खुद-ब-खुद गैस जलने लगती। पानी गर्म होने के बाद थरमोस्टैट से गैस स्वत: बंद हो जाती। इस प्रकार पानी न ज्यादा ठंडा और न ज्यादा गर्म पर एक निश्चित सही तापमान पर रहता।

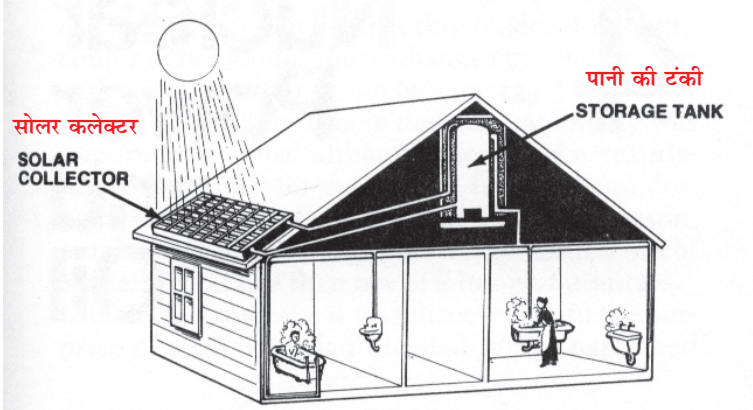

A SOLAR HOUSE IN DIAGRAM FORM
एक सोलर घर का चित्र

उसके बाद में बिजली के हीटर आए। गैस की तरह इनमें खतरे और विस्फोट की कोई सम्भावना नहीं थी और इनसे पानी आसानी से गर्म किया जा सकता था।

जैसे-जैसे पानी को गर्म करना आसान हुआ वैसे-वैसे लोगों ने बर्तन और कपड़े धोने की मशीनें खरीदीं और अतिरिक्त स्नानघर बनवाए। इस वजह से उनकी गर्म पानी की जरूरतें बढ़ीं। सोलर वॉटर हीटर के लिए इतनी अधिक मात्रा में पानी गर्म करना सम्भव न था।

1945 में द्वितीय महायुद्ध के अंत के समय तेल और गैस का बोलबाला था। युद्ध के दौरान लोगों ने ईंधन के उपयोग में कटौती की थी जिससे कि फौज को उसका ज्यादा हिस्सा मिल पाए। पर युद्ध समाप्त होने के बाद लोग ईंधन का बेलगाम उपयोग करने लगे।

उस समय खाड़ी के क्षेत्र में तेल के नए कुएं खोजे जा रहे थे। तेल और गैस लोगों की जरूरतों से कहीं ज्यादा मात्रा में उपलब्ध थी। लोगों की ऊष्मा की सभी जरूरतों को बिना किसी समस्या के तेल की भट्टियां लगाकर पूरा किया जा सकता था। बस आपको सिर्फ तेल की टंकी भरनी थी क्योंकि बाकी सारा काम थर्मोस्टैट खुद करता।

1950-60 के दशकों में तेल के इतने सस्ते होने की वजह से अब किसी की सौर-ऊर्जा में रुचि नहीं थी। सौर-ऊर्जा का सूरज ढल रहा था।

4 आणविक ऊर्जा और तेल

द्वितीय महायुद्ध के बाद खाड़ी में तेल के नए कुओं की खोज तो सौर-ऊर्जा के पतन का सिर्फ एक कारण थी।

1896 में यह खोजा गया कि कुछ प्रकार के पदार्थ जैसे यूरेनियम और थोरियम के जटिल अणुओं में से लगातार छोटे-छोटे कण निकलते रहते थे। क्योंकि यह कण अणुओं से भी बहुत छोटे थे इसलिए इन्हें 'सब-एटामिक पार्टिकल' बुलाया गया। यह प्रक्रिया 'रेडियोएक्टीविटी' या विकीरण कहलाती है।

इस प्रक्रिया के दौरान यूरेनियम और थोरियम में से बहुत मात्रा में ऊष्मा निकलती है। कोयला या तेल जलाने पर भी ऊष्मा पैदा होती है, परन्तु उनकी तुलना में प्रति अणु यूरेनियम और थोरियम में निकलने वाली ऊर्जा की मात्रा बहुत ज्यादा होती है।

रेडियोधर्मी विकीरण की ऊष्मा आणविक नाभि (न्यूक्लियस) में बदलाव के कारण पैदा होती है। नाभि अणु के केंद्र में स्थित होती है। इन परिवर्तनों से उत्पन्न ऊर्जा को आणविक ऊर्जा कहा जाता है।

बहुत सालों तक आणविक ऊर्जा को बहुत महत्वपूर्ण नहीं समझा गया। वैसे तो हर अणु में विशाल मात्रा में आणविक ऊर्जा होती है परन्तु एक समय में बहुत कम अणुओं में ही इस प्रकार के बदलाव आते हैं। इसलिए एक लकड़ी के लट्ठे को जलाकर मिली कुल ऊर्जा यूरेनियम की एक गेंद से अधिक हो सकती है।

1939 में वैज्ञानिकों ने एक अनूठी खोज की। उन्होंने यूरेनियम के एक अणु को एक सब-एटामिक कण न्यूट्रान से टकराया। इससे यूरेनियम का अणु दो लगभग बराबर भागों में विभक्त हो गया। इस विखंडन को यूरेनियम फिशन कहते हैं।

इस विखंडन की प्रक्रिया में कई न्यूट्रान बाहर निकलते हैं। यह न्यूट्रान, यूरेनियम के अन्य अणुओं से टकराकर उनमें भी विखंडित करते हैं - और इससे और अधिक न्यूट्रान पैदा होते हैं। यह बहुत तीव्र गति से होता है और चंद सेकण्ड में करोड़ों-अरबों यूरेनियम के अणुओं में विखंडन होता है।

जिस यूरेनियम के अणु का विखंडन होता है वो एटामिक कण फेंकने वाले अणुओं से कहीं ज्यादा ऊर्जा पैदा करता है। अगर बहुत मात्रा में यूरेनियम के अणुओं का विखंडन होगा तो उससे बहुत अधिक ऊर्जा निकलेगी।

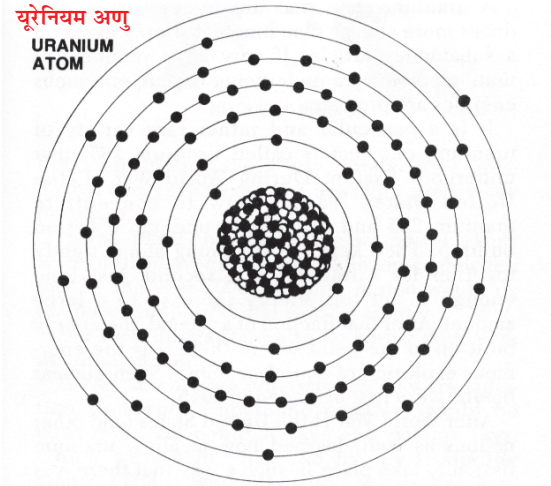

*See *How Did We Find Out About Nuclear Power?* (Walker, 1976)

यूरेनियम के एक विशेष प्रकार - यूरेनियम-235 में ही सिर्फ विखंडन होता है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान अमरीका ने यूरेनियम-235 को गाढ़ा कर उसका सफलतापूर्वक विखंडन किया। उन्होंने विखंडित अणुओं को एक सेकण्ड से भी कम के लिए इकट्ठा रखा जिससे उनकी ऊर्जा प्रचण्ड मात्रा में बढ़ी। एक सेकण्ड के बाद उसकी ऊर्जा इतनी अधिक बढ़ी कि उससे आणविक बम्ब का विस्फोट हुआ। ऐसे आणविक बम्ब का 1945 में पहला विस्फोट हुआ।

द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीका और अन्य देशों ने यूरेनियम के विखंडन को नियंत्रित करना सीखा जिससे कि उसमें कोई विस्फोट न हो। यहां

यूरेनियम के अणु लगातार एक व्यवस्थित तरीके से विखंडित होते रहते और उससे प्रचुर मात्रा में ऊर्जा निकलती जो अनेक स्थानों पर उपयोग में लाई जा सकती थी।

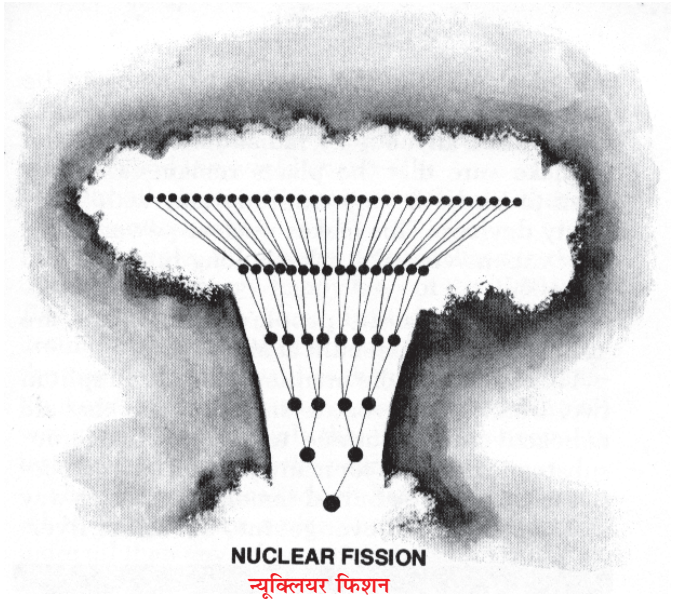

NUCLEAR FISSION
न्यूक्लियर फिशन

1950 और 1960 में दुनिया भर में अनेकों आणविक विद्युत संयंत्रों का निर्माण हुआ। लोगों को लगा कि सन 2000 तक यूरेनियम का विखंडन विश्व ऊर्जा की ज्यादातर जरूरतों की आपूर्ति करेगा।

पर फिर यूरेनियम और तेल दोनों के हालात खराब होने लगे।

यूरेनियम विखंडन में विकिरण की समस्याएं आने लगीं। विकिरण के कण बहुत खतरनाक होते हैं। एक्स-रे और गामा-रे भी विखंडन द्वारा पैदा होती हैं और वो भी हानिकारक हो सकती हैं। (दरअसल ये प्रकाश की किरणों जैसी ही होती हैं, परन्तु उनकी लम्बाई कम होती है और वे बहुत खतरनाक होती हैं।)

पर विखंडन के दुश्प्रभावों पर काबू पाया जा सकता था। आणविक विद्युत संयंत्रों में आज तक विकिरण से कोई मृत्यु नहीं हुई है। पर सुरक्षा की दृष्टि से इन संयंत्रों को बहुत सोच समझ कर और तमाम सुरक्षा के उपकरणों के साथ बनाया जाता है। इस वजह से आणविक विद्युत संयंत्रों पर खर्च बहुत अधिक होता है और उनके निर्माण में भी बहुत समय लगता है।

बहुत से लोगों को आणविक संयंत्रों से डर लगता है और वे उनके निर्माण की खिलाफत करते हैं।

यूरेनियम के अणुओं के दो हिस्सों में बंटने के बाद जो हल्के अणु बचते हैं उनसे भी बरसों तक खतरनाक विकिरण निकलता रहता है। इस आणविक कचरे को इस प्रकार दफन करना होता है जिससे कि वो मिट्टी, पानी या हवा के सम्पर्क में न आए। कुछ लोगों के अनुसार इस आणविक कचरे को सुरक्षित रूप से दफन करना बहुत मुश्किल काम होगा क्योंकि इस कचरे की मात्रा बढ़ती ही जाएगी। अंत में यह रेडियोधर्मी कचरा शायद पूरी दुनिया में जहर फैलाए।

जहां तक तेल की बात है उसकी सप्लाई धीरे-धीरे कम हो रही है।

1950 और 1960 में जब ऊर्जा बहुत मात्रा में उपलब्ध थी तब लोगों को इस कमी की कल्पना तक करना मुश्किल था। पर असल में जमीन के नीचे तेल की मात्रा बहुत अधिक नहीं है। दुनिया भर में लोग तेल का अंधाधुंध उपयोग कर रहे हैं और तेल की खपत हर साल बढ़ रही है। जिस तरह से तेल की मांग और खपत बेलगाम बढ़ रही है उससे लगता है कि सन 2000 के कुछ सालों बाद तेल मिलना मुश्किल हो जाए।

अमरीका न केवल दुनिया में तेल का सबसे बड़ा उत्पादक है पर वो अन्य किसी देश की अपेक्षा ज्यादा तेल इस्तेमाल करता है। 1970 में अमरीका को भी तेल की तंगी महसूस होने लगी। 1970 में अमरीका में सबसे अधिक तेल का उत्पादन हुआ और उसके बाद से उसमें हर साल लगातार गिरावट आई। क्योंकि अमरीका में तेल की खपत लगातार बढ़ती रही इसलिए उसे अब खाड़ी के देशों से तेल खरीदना पड़ा।

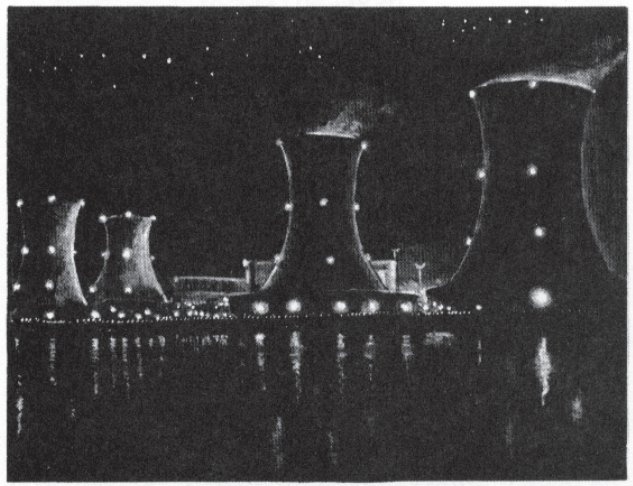

THREE MILE ISLAND थ्री माईल द्वीप

कुछ समय तक तो तेल का आयात ठीक-ठाक चलता रहा परन्तु खाड़ी का इलाका हमेशा से एक अशान्त क्षेत्र रहा है। 1920 से उसपर इंग्लैंड और फ्रांस का नियंत्रण था पर द्वितीय महायुद्ध के बाद खाड़ी के कई देश स्वतंत्र हुए। उसके बाद उन्होंने तेल के कुओं पर अपना कब्जा किया और संगठन बनाकर एकत्रित होकर तेल की कीमतें बढ़ायीं।

1973 में कुछ समय के लिए खाड़ी के देशों ने अमरीका और कुछ अन्य देशों को तेल बेंचने पर पाबन्दी लगाई। उससे अमरीका में पेट्रोल पम्पों पर कारों की लम्बी कतारें लगने लगीं और पहली बार लोगों को विदेशी तेल पर अपनी निर्भरता का अहसास हुआ। इस बहिष्कार के बाद तेल की कीमतों में उछाल आया और वो बहुत मंहगा हुआ।

सस्ती और प्रचुर मात्रा में ऊर्जा का काल अब समाप्त हुआ था और पहली बाद लागों ने महसूस किया कि तेल कुछ दशकों से ज्यादा समय तक उपलब्ध नहीं होगा। उसके बाद क्या होगा?

इसका एक विकल्प हो सकता था अधिक आणविक संयंत्रों का निर्माण। पर आणविक संयंत्रों को लेकर लोगों के दिलों में डर था खासकर जब पेंसिलवेनिया के थ्री माईल आयलैंड स्थित आणविक संयंत्र में एक भीषण दुर्घटना हुई (वैसे इसमें किसी की मृत्यु नहीं हुई)।

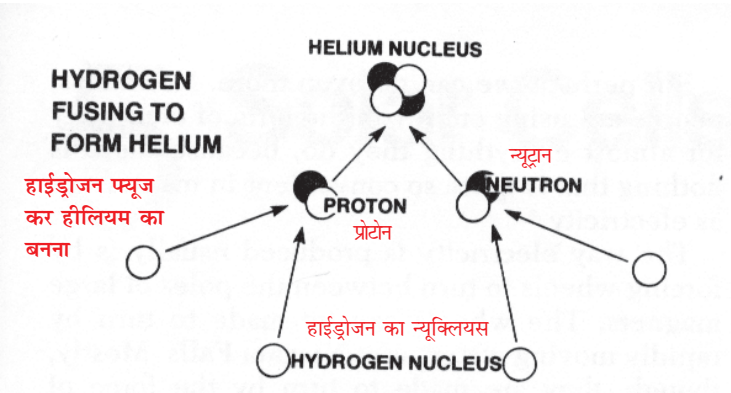

क्योंकि कोयले के अथाह भंडार थे इसलिए दूसरा विकल्प था और ज्यादा कोयला इस्तेमाल करना। पर कोयले का खनन और उसको एक जगह से दूसरे स्थान तक ढोना मुश्किल काम था। कोयला जलने से हवा प्रदूषित होती है (तेल जलने से भी ऐसा ही होता है)। बहुत से वैज्ञानिकों का मानना है कि

वायुमंडल में कार्बन-डाईआक्साइड की मात्रा थोड़ी भी बढ़ने से पृथ्वी के मौसम में एक खराब बदलाव आएगा।

ऊर्जा के कुछ अन्य स्रोत्र भी हैं जैसे हवा, नदियों की धाराएं और पृथ्वी की गर्भ में दबी ऊष्मा। हरेक की अपनी कमियां हैं और वे सब मिलकर भी शायद ऊर्जा की भरपाई न कर पाएं।

भविष्य का एक अन्य ऊर्जा का स्रोत्र है - फ्यूजन। इसमें यूरेनियम की जरूरत नहीं पड़ती है। इसमें हाईड्रोजन ने छोटे अणुओं को कुचलकर हीलियम के कुछ बड़े अणु बनाए जाते हैं। यह फ्यूजन ऊर्जा ही बड़े शक्तिशाली हाईड्रोजन बम्ब का स्रोत्र है।

फ्यूजन द्वारा फिशन की तुलना में अधिक ऊर्जा मिलती है और कम विकिरण पैदा होता है। हाईड्रोजन आसानी से मिलती है और उसे उपयोग में लाना यूरेनियम की अपेक्षा कहीं अधिक आसान है। हाईड्रोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और हम करोड़ों सालों तक उसका उपयोग कर पाएंगे।

पर एक बड़ी मुश्किल है। हम फ्यूजन द्वारा बड़े बम्ब तो बना सकते हैं परन्तु हम उसे नियंत्रित कर सुरक्षित रूप से ऊर्जा पैदा नहीं कर सकते। शायद भविष्य में इसका कोई हल निकले। पर पिछले तीस साल से वैज्ञानिक इस समस्या से जूझ रहे हैं और अभी तक उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली है।

क्या हम आणविक फ्यूजन का इंतजार करते रहें या फिर इसके अलावा भी और कोई विकल्प है?

इसका विकल्प है - सौर-ऊर्जा। सूरज हमेशा चमकता रहता है। सस्ते तेल के आगमन से पहले हमने सौर-ऊर्जा का काफी दोहन भी किया था। हम उस पर दुबारा शोध शुरू करें इसी में भलाई है।

सौर-ऊर्जा से हम पानी को गर्म कर सकते हैं, घरों को गर्म कर सकते हैं और कुछ मशीनें भी चला सकते हैं। इससे हमारे ईंधन के खर्च में जरूर कटौती आएगी।

पर हम चाहें तो इससे भी कुछ अधिक कर सकते हैं। आजकल लोग हर जगह बिजली का इस्तेमाल कर रहे हैं। इसका कारण साफ है - विद्युत को इस्तेमाल करना बहुत ही आसान है।

विद्युत निर्माण के लिए टरबाईन को एक बड़े चुम्बक के ध्रुवों के बीच में घुमाया जाता है। इस टरबाईन को गिरते पानी से घुमाया जा सकता है जैसा कि नियागरा फॉल्स में होता है। वैसे इन पहियों को भाप से चलाया जाता है और यह भाप कोयले या तेल जलाकर पैदा की जाती है।

सौर-ऊर्जा से पानी उबालकर उसकी भाप से टरबाईन को चलाकर क्या

बिजली नहीं पैदा की जा सकती है?

शायद उसकी जरूरत ही न पड़े। क्योंकि अब उससे भी बढ़िया तरीका उपलब्ध है।

स्टीम टरबाईन
STEAM TURBINE

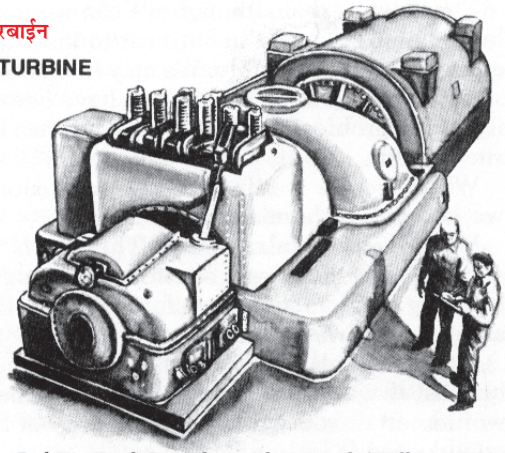

*See *How Did We Find Out About Electricity?* (Walker, 1973)

5 सोलर सेल्स

अणुओं की केंद्रीय नाभि के बाहर एक या उससे ज्यादा छोटे कण होते हैं जिन्हें इलेक्ट्रान कहते हैं। जब ये इलेक्ट्रान एक अणु से टूटकर दूसरे में जाते हैं तभी विद्युत धारा का प्रवाह होता है।

सूर्य की धूप में इतनी ऊर्जा होती है कि उससे कुछ प्रकार के अणुओं के इलेक्ट्रान्स टूट जाते हैं। अगर इन अणुओं वाले पदार्थों को धूप में रखा गया तो उनमें विद्युत धारा बहेगी।

इलेक्ट्रान्स के बारे में जानने से बहुत पहले वैज्ञानिकों ने प्रकाश और विद्युत के बीच के सम्बंध को जान लिया था। 1873 में एक रासायनशास्त्री विलौगबे स्मिथ ने अचानक एक खोज की। जब उसने सिलेनियम नामक धातु पर प्रकाश चमकाया तो उसमें से विद्युत प्रवाह हुआ। अंधेरे में विद्युत प्रवाह बंद हो गया।

शुरू में इसे सिर्फ एक अजूबा समझा गया क्योंकि विद्युत प्रवाह की मात्रा बहुत ही कम थी। पर कुछ समय बाद लोगों को उसके उपयोग सूझने लगे।

उदाहरण के लिए सिलेनियम को 'विद्युत आंख' के लिए उपयोग किया

जा सकता है। विद्युत आंख एक छोटी डिब्बी होती है जिसमें से सारी हवा बाहर निकाल दी जाती है। उसकी धातु की सतह पर सिलीनियम की एक परत होती है। जब उस पर प्रकाश पड़ता है तो सिलेनियम में से इलेक्ट्रान्स बाहर निकलते हैं और उनसे एक छोटा विद्युत करंट बहता है। यह बहता करंट एक रीले को चालू करता है। उससे एक बड़ा करंट दरवाजे को बंद करता है। नहीं तो स्प्रिंग के कारण दरवाजा खुली स्थिति में रहता।

मान लीजिए कि 'विद्युत आंख' एक बड़े हाल के दरवाजे के पास वाली दीवार पर लगी है। दूसरी दीवार से प्रकाश की एक किरण 'विद्युत आंख' पर पड़ती है। जब तक किरण 'विद्युत आंख' पर प्रकाश डालेगी हॉल का दरवाजा बंद रहेगा। पर जैसे ही कोई व्यक्ति दरवाजे में घुसेगा तब उसका शरीर प्रकाश की किरण के पथ में आएगा। अब 'विद्युत आंख' में प्रकाश नहीं पड़ेगा और उसमें करंट बहना बंद हो जाएगा। इससे दरवाजा खुल जाएगा और वो व्यक्ति उसमें से गुजर सकेगा।

यह 'विद्युत आंख' फोटोइलेक्ट्रिक सेल का एक उदाहरण है। 'फोटो' एक यूनानी शब्द है जिसका मतलब होता है प्रकाश।

जब फोटोइलेक्ट्रिक-सेल सूर्य के प्रकाश में काम करता है तो उसे सोलर-सेल कहते हैं।

बहुत समय तक फोटोइलेक्ट्रिक उपकरण 'विद्युत आंख' जैसे छोटे यंत्रों के लिए ही उपयोग में लाए जाते थे। उनमें बहुत कम विद्युत उत्पन्न होती थी। उदाहरण के लिए सिलीनियम पर पड़ने वाले प्रकाश की सिर्फ एक प्रतिशत मात्रा ही विद्युत मे परिवर्तित होती है।

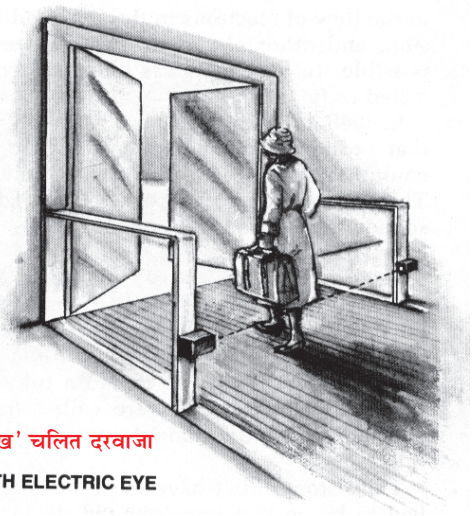

'विद्युत आंख' चलित दरवाजा

DOOR WITH ELECTRIC EYE

इस बीच वैज्ञानिक बड़ी मात्रा में विद्युत करंट के नियंत्रण पर शोध कर रहे थे।

पिछली शताब्दी में बिना हवा वाले कांच के बल्बों का उपयोग हुआ। इस बल्ब में धातु के दो तार होते थे। बाहर से एक तार को गर्म करने पर निर्वात में इलेक्ट्रान्स एक तार से दूसरे तार में जाते थे। तार के गुणधर्मों को बाहर से बदलने पर इन इलेक्ट्रान्स की गति को तेज या धीमा किया जा सकता था। इस प्रकार इलेक्ट्रान्स की गति को नियंत्रित कर रेडियो, टेलिवीजन और कई इलेक्ट्रानिक उपकरण बने। इन कांच के बल्बों को रेडियो ट्यूब कहा जाता था।

1948 में एक खोज हुई जिसमें कुछ कुचालक पदार्थों के अणुओं में से इलेक्ट्रान्स हटाने के बाद उनमें से विद्युत धारा आसानी से बहने लगी। इन पदार्थों को सेमीकंडक्टर बुलाया गया।

सेमीकंडक्टर बहुत शुद्ध पदार्थ के बने होते हैं। उनमें सूक्ष्म मात्रा में कुछ अन्य अणु मिलाए जाते हैं जिससे कि उनके इलेक्ट्रान आसानी से निकल सकें और उन्हें नियंत्रित किया जा सके। अब इलेक्ट्रान्स के बहाव को रेडियो ट्यूब की तरह ही तेज या धीमा किया जा सकता था। सेमीकंडक्टर के इन छोटे उपकरणों को ट्रांजिस्टर बुलाया गया।

ट्रांजिस्टर्स को रेडियो ट्यूब्स की भांति गर्म नहीं करना पड़ता था। इसलिए ट्रांजिस्टर वाले उपकरण बिना गर्म किए जल्दी शुरू हो जाते थे। ट्रांजिस्टर मजबूत थे, वो न तो टूटते और न ही घिसते। पर सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि ट्रांजिस्टर्स का आकार (साइज) रेडियो ट्यूब से बहुत छोटा होता था।

ट्रांजिस्टर वाले उपकरणों को अब बहुत छोटा बनाना सम्भव हुआ। अब पॉकेट रेडियो या पॉकेट कम्पयूटर को बैटरी से चलाना सम्भव था। उनमें ट्यूब्स की तुलना में बिजली का खर्च बहुत कम होता था।

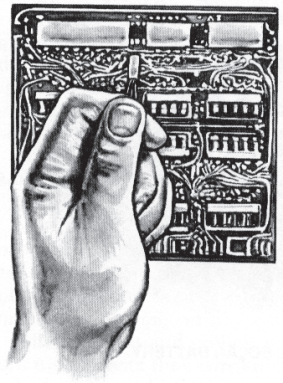

TRANSISTOR
ट्रांजिस्टर

1950 के दशक में तमाम वैज्ञानिक ट्रांजिस्टर्स में रुचि लेने लगे थे।

सिलीकोन नाम के पदार्थ से भी ट्रांजिस्टर्स बनाना सम्भव है। यह बहुत आसानी से मिलने वाला पदार्थ है - पृथ्वी पर दूसरा सबसे ज्यादा मिलने वाला पदार्थ। हमारे आसपास के पत्थरों और रेत का लगभग एक-चौथाई हिस्सा सिलिकोन का होता है।

1954 में बेल टेलीफोन प्रयोगशाला (जहां ट्रांजिस्टर का आविष्कार हुआ था) के वैज्ञानिक सिलोकोन पर प्रयोग कर रहे थे। यह महज संयोग था कि जब उन्होंने सिलिकोन पर प्रकाश चमकाया तो उसमें भी विद्युत करंट बहा।

सिलीकोन में बहने वाली विद्युत की मात्रा सिलीनियम से कहीं अधिक थी। सूरज की धूप की चार प्रतिशत ऊर्जा को सिलीकोन द्वारा विद्युत में बदलना सम्भव था। सिलीनियम की तुलना में सिलीकोन पांच-गुना अधिक कार्यकुशल थी।

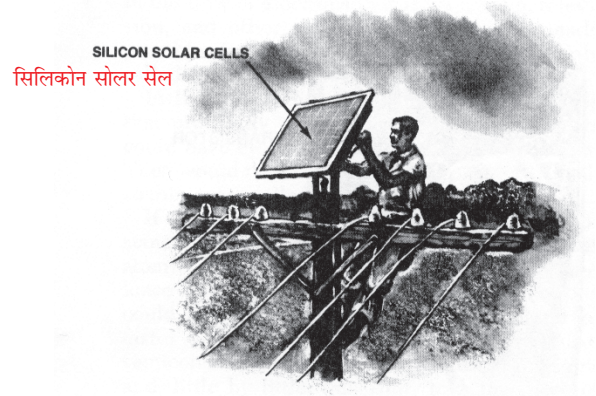

बेल कम्पनी की सोलर बैटरी BELL SOLAR BATTERY

वैज्ञानिक लगातार सिलीकोन पर प्रयोग करते रहे। वो उसमें सूक्ष्म मात्रा में अन्य पदार्थ मिलाकर परीक्षण करते रहे। अंत में वो सिलीकोन से धूप की 16 प्रतिशत ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित कर पाए।

पर इसमें एक दिक्कत थी।

सिलीकोन - जो प्रचुर मात्रा में पत्थरों और रेत में पाई जाती है के अणु उसके अंदर ऑक्सीजन के साथ बहुत मजबूती से जुड़े होते हैं। इस सिलीकोन-ऑक्सीजन के बंधन को तोड़ना बहुत मुश्किल काम होता है और उसमें बहुत अधिक मेहनत, समय और ऊर्जा खर्च होती है।

इस प्रकार बनी सिलीकोन बहुत मंहगी होती है। फिर इस सिलीकोन के ठोस टुकड़े को बहुत पतले वेफर्स (चकतियों) में काटकर उनमें सूक्ष्म मात्रा में

अशुद्धियां मिलानी पड़ती हैं। इससे कीमत और बढ़ती है। अंत में सिलीकोन चाहें वो सिलीनियम से बेहतर जरूर हो उसका एक अकेला सोलर-सेल बहुत कम विद्युत ही पैदा करता है। रोजमर्रा के किसी भी काम को करने के लिए बहुत सारे सोलर-सेल्स को एक साथ जोड़ना जरूरी होता है।

अंतरिक्ष कार्यक्रम में सोलर-सेल्स ने अपनी दक्षता का सफलतापूर्वक प्रमाण दिया।

1957 से सोवियत रूस और अमरीका ने अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले कृत्रिम उपग्रह भेजने शुरू किए। अंत में उन्होंने ऐसे खोजी यान चंद्रमा और दूर स्थित ग्रह शनि पर भी भेजे जो पृथ्वी से 80-करोड़ मील दूर थे।

उपग्रहों और खोजी यानों को अपने उपकरण चलाने और रेडियो द्वारा पृथ्वी से सम्पर्क साधने के लिए विद्युत की जरूरत थी। विद्युत का स्रोत्र एकदम हल्का और बरसों तक चलने वाला होना चाहिए था।

सोलर-सेल्स इस काम के लिए एकदम उपयुक्त थे। अमरीका ने अपने उपग्रहों में विद्युत सप्लाई के लिए सोलर-सेल्स उपयोग किए और उन्होंने कुशलतापूर्वक काम किया।

उपग्रहों में बहुत अधिक ऊर्जा की जरूरत भी नहीं थी और दूसरे अंतरिक्ष में सूर्य के अलावा ऊर्जा का कोई अन्य वैकल्पिक स्रोत्र भी नहीं था।

परन्तु पृथ्वी पर मामला बिल्कुल अलग था। वहां सोलर-सेल्स बहुत मंहगे थे। अन्य साधनों से पैदा की गई विद्युत बहुत सस्ती थी। 1960 और 1970 के दशकों में सूर्य के प्रकाश से जनित विद्युत एक सपना बनी रही।

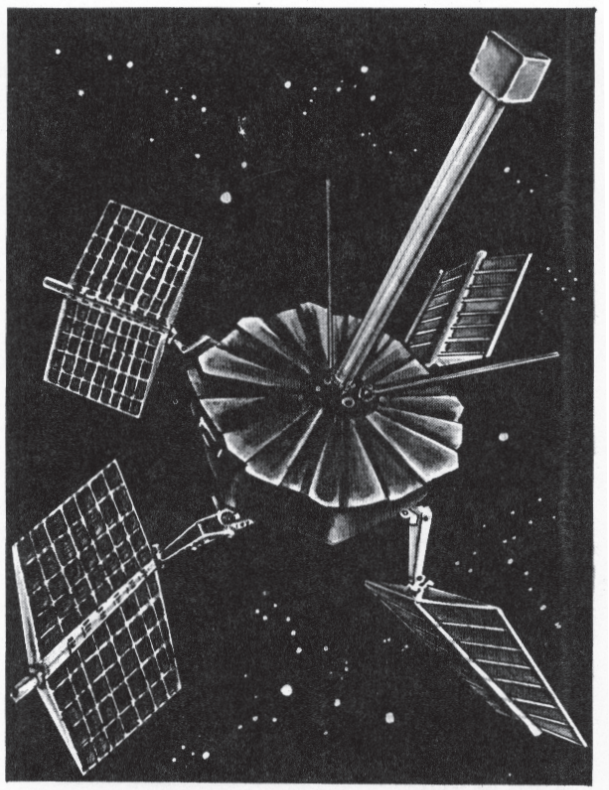

SATELLITE WITH SOLAR COLLECTOR PADDLES

उपग्रह के साथ जुड़े सोलर पैनल्स

6 रेगिस्तान और अंतरिक्ष

1980 के दौरान दो महत्वपूर्ण बदलाव आए।

एक तो इस बीच तेल की कीमतें लगातार बढ़ती रहीं। दूसरे ईंधनों की कीमतें भी बढ़ती रहीं और ऊर्जा की खपत में लगातार बढ़ौत्तरी हुई।

दूसरी ओर बेहतर, अधिक कार्यकुशल और सस्ते सोलर-सेल्स पर वैज्ञानिकों का शोध जारी रहा। पिछले बीस बरसों में एक डालर में मिलने वाली विद्युत ऊर्जा 20 गुना सस्ती हुई है। सोलर-विद्युत अभी भी परम्परागत ईंधनों से सैकड़ों गुना मंहगी है। परन्तु भविष्य में सौर-ऊर्जा सस्ती होगी और परम्परागत ईंधन मंहगे होंगे। भविष्य में सौर-ऊर्जा शायद एक बेहतर विकल्प साबित होगी।

रेगिस्तान में स्थित सोलर स्टेशन में लगे सैकड़ों दर्पण

वैसे तो सूर्य की धूप में अद्‌भुत ताकत है परन्तु यह प्रकाश बिखरा हुआ है। अन्य ईंधनों की तुलना में सौर-ऊर्जा में यह एक बड़ी कमी है।

अगर किसी स्थान पर आपको बहुत ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता हो तो आप वहां पर बहुत सारी लकड़ियां, कोयला या तेल जला सकते हैं। परन्तु सौर-उर्जा के साथ ऐसा करना सम्भव नहीं है। अधिक सौर-ऊर्जा के लिए आपको उसे एक बड़े क्षेत्रफल से इकट्ठा करना होगा।

अमरीका जैसे देश की बिजली की आपूर्ती के लिए आपको हजारों मील के क्षेत्रफल में सोलर-सेल्स लगाने होंगे। और सारी दुनिया की बिजली की खपत को पूरा करने के लिए लाखों मील के क्षेत्रफल में सोलर-सेल्स लगाने होंगे।

भाग्यवश जमीन की अभी कोई कमी नहीं है। दुनिया में करोड़ों वर्ग

मील के रेगिस्तान हैं जो लगभग बंजर हैं और जहां कुछ खास नहीं होता है। उदाहरण के लिए सहारा रेगिस्तान को ही लें जिसका क्षेत्रफल अमरीका के बराबर का है। इसी प्रकार के बड़े रेगिस्तानी इलाके साऊदी अरब, ईरान, दक्षिणी आस्ट्रेलिया और अमरीका में भी हैं।

इन क्षेत्रों में सोलर-पैनल्स लगाने में धन, मेहनत और समय लगेगा। फिर इन इलाकों को जंगली जानवरों, आतंकवादियों, धूल भरे तूफानों और प्राकृतिक आपदाओं से भी सुरक्षित रखना होगा।

पृथ्वी पर कुछ ऐसी परिस्थितियों आती हैं जब सूर्य के प्रकाश के पड़ने में विघ्न पड़ता है। कुछ परिस्थितियों में सूर्य छिप जाता है। रेतीली आंधियां धूप कम करने के साथ-साथ सोलर-सेल्स को नुकसान भी पहुंचा सकती हैं। बादल, धुंध, कोहरे, धुंए आदि से बिजली का उत्पादन कम हो सकता है।

वैसे गर्म रेगिस्तानों में बादल कम होंगे और वहां रेतीले तूफानों का प्रकोप भी कम होगा। अधिकांश दिनों में आसमान साफ होगा और चिलचिलाती धूप चमकती होगी।

अगर हवा साफ भी हो तो भी वो काफी मात्रा में सूर्य की रोशनी को सोखती है। जब सूरज सिर के ऊपर होता है तो यह सोखना बहुत कम होता है परन्तु जब सूर्य आसमान में क्षितिज के पास होता है तो प्रकाश हवा की मोटी तहों से गुजरकर ही धरती तक पहुंच सकता है। तब हवा काफी सारे प्रकाश को सोखती है। रात के समय तो सूर्य का प्रकाश होता ही नहीं है।

बिजली का उत्पादन दोपहर के कुछ घंटों के दौरान ही होगा।

क्या हम इससे कुछ बेहतर कर सकते हैं?

कुछ लोगों के अनुसार ऐसा करना जरूर सम्भव होगा।

मान लें कि हम कुछ सोलर-सेल्स अंतरिक्ष में भूमध्य-रेखा के ऊपर लगाएं? अगर इस प्रकार के सौर विद्युत संयंत्र को हम 22000 मील ऊपर लगा पाएं तो वो 24 घंटों में पृथ्वी की परिक्रमा करेगा। क्योंकि पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटों में एक बार घूमती है इसलिए जो भी व्यक्ति इस सौर विद्युत यंत्र के नीचे होगा उसे वो संयंत्र हमेशा सिर के ऊपर खड़ा नजर आएगा।

ऐसा सौर विद्युत संयंत्र हमेशा सूर्य के प्रकाश में रहेगा। अगर वो पृथ्वी के पीछे की ओर भी गया तो भी वो सूर्य की रोशनी में रहेगा। क्योंकि पृथ्वी की धुरी झुकी है इसलिए उस पर पृथ्वी की छांव नहीं पड़ेगी। मार्च 20 और सितम्बर 23 को पड़ने वाले इक्वीनॉक्स वाले दो दिनों में वो चंद घंटे अंधेरे में रहेगा। पूरे साल में इस प्रकार का सौर-संयंत्र केवल 2 प्रतिशत समय के लिए ही सूर्य से छिपा रहेगा।

एक और अच्छी बात है – अंतरिक्ष के वायुमंडल में हवा नहीं होने के कारण वहां सूर्य की रोशनी का बिल्कुल क्षय नहीं होगा। वहां जंगली जानवरों और आतंकवादियों का भी कोई खतरा नहीं होगा। वहां अगर कोई खतरा होगा तो वो छोटी उल्काओं के टकराने का डर होगा। पर यह बहुत कम ही होगा।

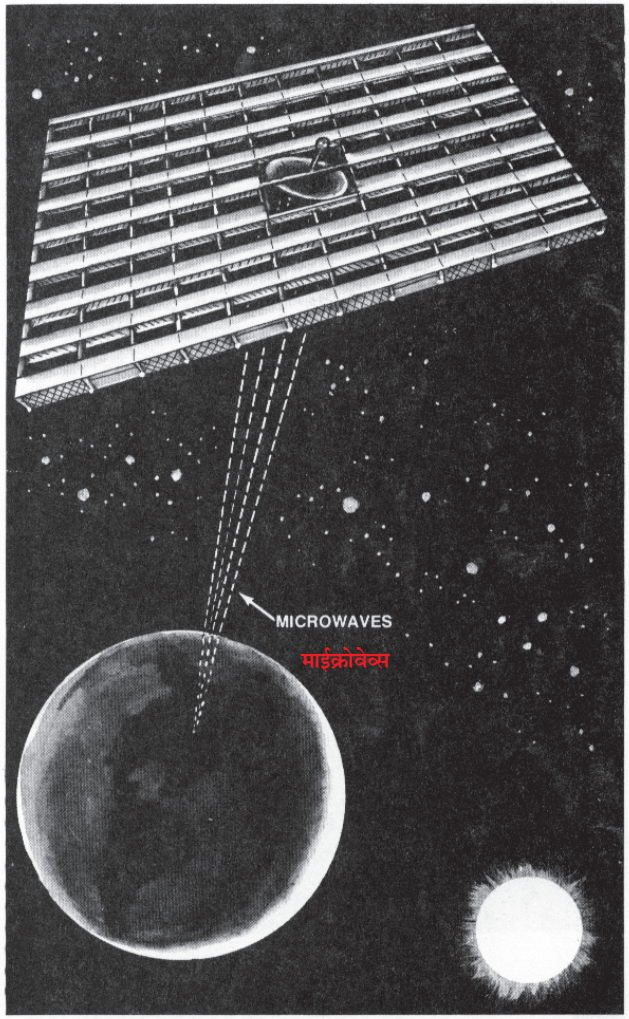

SPACE SOLAR POWER STATION
अंतरिक्ष में सोलर पॉवर स्टेशन

यह सम्भव है कि अंतरिक्ष में एक वर्ष में उतने ही सोलर-सेल्स पृथ्वी की अपेक्षाकृत 60 गुना ज्यादा बिजली का उत्पादन करें।

पर अंतरिक्ष में बिजली पैदा करने से हमें तभी कुछ फायदा होगा जब हम उसे पृथ्वी पर ला पाएं। उसका एक तरीका है कि हम विद्युत को मॉइक्रोवेव में बदलें। मॉइक्रोवेव छोटी तरंगों वाली रेडियो-वेव्स होती हैं और उनका रॉडार में उपयोग होता है। इन मॉइक्रोवेव्स को अंतरिक्ष से किरणों द्वारा पृथ्वी पर वापस भेजा जा सकता है और यहां उन्हें विशेष प्रकार के रिसीवर्स द्वारा दुबारा विद्युत में परिवर्तित किया जा सकता है। इस मॉइक्रोवेव्स को एक पतली किरण में केंद्रित किया जा सकता है जिससे कि रिसीवर का साइज छोटा रहे।

विद्युत को मॉइक्रोवेव्स में बदलने और फिर उन्हें दुबारा विद्युत में बदलने में कुछ ऊर्जा का क्षय तो जरूर होगा। परन्तु फिर भी सोलर-सेल्स द्वारा धूप से विद्युत जनित करे की तुलना में एक रिसीवर मॉइक्रोवेव्स द्वारा कहीं अधिक विद्युत पैदा करेगा।

कुछ लोग सोचते हैं कि मॉइक्रोवेव्स हानिकारक हो सकती हैं। अगर ऐसा हो तो भी उन्हें आबादी के इलाकों से किसी दूर-दराज के क्षेत्र में एकत्रित किया जा सकता है। अगर गल्ती से कोई हवाईजहाज मॉइक्रोवेव-किरण के बहुत नजदीक आए तो इस किरण को आसानी से बंद किया जा सकता है। पृथ्वी पर ऊर्जा की कमी को देखते हुए मॉइक्रोवेव्स का खतरा उतना अधिक नहीं है।

MICROWAVE RECEIVER

माईक्रोवेव रिसीवर

पृथ्वी को बिजली सप्लाई के लिए चंद सोलर-सेल्स लगाकर काम नहीं बनेगा। अंतरिक्ष में लगाए सोलर-सेल्स की संख्या बहुत बड़ी होगी। शायद उनका क्षेत्रफल कई वर्ग मील का हो। ऐसे एक सोलर स्पेस पावर स्टेशन से पृथ्वी की बिजली आपूर्ति सम्भव नहीं होगी। उसके लिए अंतरिक्ष में ऐसे दर्जनों पावर स्टेशन लगाने होंगे जो लगातार पृथ्वी की परिक्रमा करेंगे और साथ में बिजली की सप्लाई भी जारी रखेंगे।

अंतरिक्ष में इस प्रकार के बिजलीघर लगाने में सैकड़ों-हजारों करोड़ डालर का खर्च जरूर आएगा। पर पृथ्वीवासी हर साल सैकड़ों-हजारों करोड़ डालर का खर्च युद्ध - टैंकों और लड़ाकू जहाजों पर खर्च करते हैं। यह युद्ध की मशीनें सिर्फ ऊर्जा खाती हैं - पैदा नहीं करतीं। अगर किसी तरीके से हम पृथ्वी पर शांति स्थापित कर सकें तो फिर बंदूकों, टैंकों, युद्धपोतों और जंगी जहाजों की बजाए इस खर्च से हम धरती पर पर्याप्त मात्रा में विद्युत ला सकते हैं।

इस सब का यह मतलब नहीं है कि हम केवल सोलर-ऊर्जा पर आश्रित रहें। जब तक हम अंतरिक्ष में पहला बिजलीघर स्थापित कर पाएंगे तब तक हो सकता है कि वैज्ञानिकों ने नियंत्रित नाभकीय-फ्यूजन की तकनीक का उपयोग सीख लिया हो। तब तक शायद हम पवन, ज्वार-भाटे और ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोत्रों का भी बेहतर दोहन सीख जाएं।

अगर हम ऊर्जा के इन सभी स्रोत्रों से विद्युत पैदा कर पाए तो फिर हमें किसी भी चीज की कमी नहीं रहेगी। फिर पृथ्वी पर ईंधन की कभी कोई किल्लत नहीं होगी। विद्युत द्वारा हम पानी को हाईड्रोजन और ऑक्सीजन में तोड़ सकेंगे।

हाईड्रोजन खुद में एक बेहतरीन ईंधन है। जलने पर वो ऑक्सीजन के साथ मिलकर फिर पानी बनाती है। इस प्रक्रिया में बिजली के अलावा और कुछ नहीं इस्तेमाल होता है। और यह बिजली सूर्य की धूप से मिलेगी जो हमें करोड़ों सालों तक लगातार उपलब्ध रहेगी।

हाईड्रोजन एक विस्फोटक गैस है और उसे इस्तेमाल करने में खतरा है। हम आसानी से हाईड्रोजन को हवा में मौजूद कार्बनडाईऑक्साइड के साथ मिलाकर मीथेन गैस बना सकते हैं। मीथेन अधिक सुरक्षित है और जलने के बाद वो पानी और कार्बनडाईऑक्साइड पैदा करती है - वही तत्व जिनसे वो बनी थी।

सौर-ऊर्जा कब से इंतजार कर रही है। अगर हमने सौर-ऊर्जा अपनाने की दूरदृष्टि और हिम्मत अपनाई तो हो सकता है पृथ्वी पर मनुष्यों का भविष्य अतीत के किसी भी काल से कहीं अधिक उज्जवल होगा।

WINDMILL ON BUILDING
इमारत पर लगी पवनचक्की (विंडमिल)

अंत